बहुत बार मन करता है |

फिर अपनी परछायी से कहता हूँ कि कुछ क्षणों के लिए मेरी जगह ले ले | कुछ देर के लिए मुझे विपक्ष में बैठ कर जम कर अपनी ही आलोचना करने दे | मुझे मेरा सबसे बड़ा विरोधी बनने दे कि जो विरोधी हैं भी उनको भी अपने विरोध में विरोधाभास सा होने लगे, शंका होने लगे कि उन्होंने अगर विरोध किया है तो मैंने क्या किया है | एक बार ही सही, मुझे अपने खिलाफ ही पक्षपात करने दे | कुछ देर के लिए ही सही, मेरी जगह संभाले |

परन्तु यहाँ कौन मित्र है?

परछायी? ज्यों ही सभी दिशाओं से प्रकाश बिंदु मुझे मंच पर प्रदीप्त करते हैं, त्यों ही परछायी मेरे नीचे से खिसक कर उसी विपक्ष में जा बैठती है जहां मैं उसे अभी अभी अपने आप को देखने कि लालसा के बारे में बता रहा था | वहाँ से वह वही आलोचक बनने की चेष्ठा करती है जिसकी कल्पना अभी मैंने की थी | बन भी जाती, अगर मुझको ठीक से जानती होती | पर यहाँ कौन किसी के बारे में इतना जानने का इच्छुक है | मेरी आस बस आस बन कर रह जाती है, और मैं?

जूझता हूँ |

Countless times I’ve wished I’d vanish from the center stage and leave my shadow behind, so that I can sneak into the dark shrouds of the opposition that surrounds me. And while my shadow stands there, I play my greatest rival; I lend a heavy hand on myself, so harsh that even my critics would look at their own words against me with doubt if they were enough. It’s wishful thinking. No longer that the spotlights flood my existence on the stage, the shadow deceptively sneaks out to get comfortable in those dark corners and tries to do what I had wanted to, to myself. It wouldn’t fail, had it known me.

All I can do is shrug, listen and wish, another time.